REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2019

अब्दुल बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य में साम्प्रदायिकता

रवीन्द्र कुमार[1] , डॉ. विनोद कुमार[2]
[1] अनुसन्धित्सु (हिन्दी विभाग),लवली प्रोफैशनल यूनीवर्सिटी, (फगवाड़ा पंजाब).
[2] सहायक प्रोफेसर , लवली प्रोफैशनल यूनीवर्सिटी, (फगवाड़ा पंजाब).

सारांशः

मानवीय जीवन सदैव ही संघर्ष का जीवन रहा है। कितना भी पर्दा डालें किन्तु इसका कारण केवल मनुष्य की संकुचित मनोवृति ही रही है और इसका मुख्य कारण मनुष्य द्वारा तैयार किया गया वातावरण ही है जो उसे पदार्थवादी बनाए रखने में अपनी विशेष भूमिका निभाता है। संकुचित धारणा के साथ साथ किसी भी बात अथवा विचार के प्रति कट्टरता भी मानवीय जीवन के सकारात्मक प्रवृति में सबसे बड़ी अवरोधक है। समाज में 'धर्म' एक सेतु का कार्य करता है जो मानव को सामाजिक वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने में; उसमें सुधार करने में; भावी समाज हेतु एक निश्चित रूप से सुदृढ़ नींव रखने में अपना मूल कर्तव्य मानता है। किन्तु संकुचित दृष्टिकोण एवं नकारात्मक वातावरण के कारण लोग धर्म के मूल कर्तव्य में भी अपना स्वार्थ जोड़कर उसे दुषित करने में अपनी कोई कसर नहीं छोड़ना चाहते। संसारिक समाज में जितने भी धर्म प्रचलित हैं उन सभी का एक ही लक्ष्य है। संसार में शान्ति की स्थापना करते हुए मानव जाति को परमात्मा के एकजोत स्वरूप का ज्ञान देने के साथ–साथ समाजिक कल्याण हेतु अपना कर्मचक्र चलाना। किन्तु संसार में विभिन्न धर्मों के होते हुए भी आज संसार शान्ति प्राप्ति हेतु तड़प की स्थिति में है।

मूल शब्दः साम्प्रदायिकता, मानसिक प्रवृति, धार्मिक कट्टरता, अहिंसा, संकुचित विचार, जातिय संगठन, अहं, संघर्ष, सामाजिक कुरीतियाँ

अपनी प्रशंसा सुनना, अपनी बात को ही सही मानना मानवीय जीवन की संकुचित सोच के साथ साथ एक बहुत बड़ी मानवीय विकृति भी रही है।इसी विकृति को खत्म करने अथवा दूर करने हेतु संसार में समय समय पर विभिन्न प्रकार की धार्मिक परिस्थितियाँ पैदा हुईं। विभिन्न साधू संतों ने प्रगट हो संसार को सत्य की खोज की ओर अग्रसर करने का प्रयास किया। आज विभिन्न प्रकार के धर्म, सम्प्रदाय, मठ, आश्रम, डेरे इत्यादि प्रचलित हैं। किन्तु इतना कुछ होते हुए भी संसार विनाश की रह पर है। "दुनिया के अधिकतर प्रमुख धर्म–हिंदू, इस्लाम, ईसाई और बौद्ध–यहां हैं और इनके साथ आस्था और कर्मकांड की दृष्टि से इतने अलग–अलग ढंग के संप्रदाय और पंथ भी यहां हैं जो विस्मय में डाल देते हैं।"[1]कहने का भाव यह कि मर्ज को ठीक करने के लिए जितनी ज़्यादा दवा ली उतना ही मर्ज बढ़ता गया। मानसिक शान्ति, भ्रम मुक्त, सकारात्मक प्रवृति इत्यादि अपनाने हेतु जितने ज़्यादा धर्म आये समस्याएँ उतनी ही बढ़ती गई।

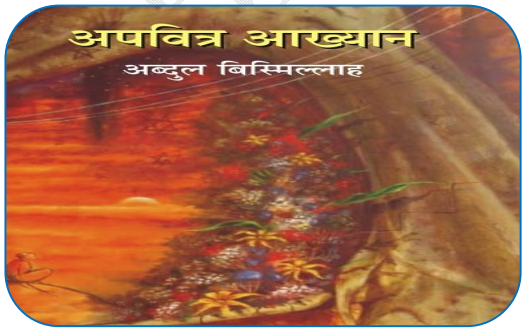

लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह आधुनिक युग के प्रगतिशील लेखकों की कड़ी का एक हिस्सा हैं। यह सत्य है कि उनका जीवन संघर्ष से भरपूर रहा है। मुस्लिम धर्म से संबंधित होते हुए उन्होंने हिन्दू प्रधान समाज में अपना जीवन यापन किया। विभिन्न सामाजिक कुरीतियों को सहते हुए उन्होंने अपना साहित्य लेखन निर्विघ्न आज भी जारी रखा हुआ

है।धर्म एवं जाति के आधार पर स्वयं के साथ हुई विसंगतियों की झलक उनके सम्पूर्ण कथा साहित्य में दृष्टिगोचर है। 'समर शेष है' उनका एक प्रकार से आत्मकथात्मक उपन्यास ही है। उसमें वह स्वयं ही कहते हुए नज़र आते हैं कि "संघर्ष केवल वही नहीं है जो चंद खास लोगों और चंद आम लोगों के बीच होता है, संघर्ष किसी आदमी का जीवित रहना भी है–जब वह खुद से ही लड़ता है और खुद से ही निपटता है, खुद से ही हारता है और खुद से ही जीतता है।"[2]उनके इस तरह के विचार से स्वयं ही यह सिद्ध होता है कि वह समकालीन सामाजिक हालातों से बुरी तरह से विक्षिप्त थे।धर्म के नाम पर उनके साथ हुई विसंगतियों के आधार पर उन्होंने विभिन्न अपनी रचनाओं में उनका साक्षात् चित्रण किया है। वे धार्मिक कट्टरता के प्रति लोगों की इस धारणा से स्वयं को इतना असहज महसूस करते थे कि उन्हेंने अपने 'दंतकथा' उपन्यास में एक मुर्गे की जुबानीभी धर्म के प्रति अप्रत्यक्ष रूप से क्षोभ ही दिखाया है"वे लोग 'खून' करते भी थे, पर सबका नहीं। जब उन्हें खून चूसना होता है तो वे अपने से कमजोर आदमी को तलाश्ते! और जब उन्हें खून करना होता तो यह देखते कि वे खुद क्या हैं और जिसका खून करना है, वह क्या है? यानी खुद अगर हिन्दू है तो मुसलमान का खून करते और खुद अगर मुसलमान हैं तो हिन्दू का खून करते। मगर साँप एक ऐसा जंतु था जो इन दोनों के ही खून में बराबर की दिलचस्पी लेता था।"[3]

समाज में ऐसी मनोवृति सदैव ही केवल कट्टरता वाले व्यक्ति की मानसिक संतुष्टि के अलावा प्रत्येक के लिए नुकसान दायक ही रहती है।"लोग इस समय नाना प्रकार के दुख इसलिए भोग रहे हैं कि अधिकांश जन–समाज धर्म–हीन जीवन व्यतीत कर रहा है। यहां धर्म शब्द से तात्पर्य उस धर्म से नहीं है जिसकी परिसमाप्ति कुछ धार्मिक सिद्धांतों को मान बैठने, और कुछेक मनोरंजक धार्मिक विधि–नियमों का पालन कर लेने में ही हो जाती है, जिनसे अपने आपको धैर्य और संतोष मिल जाता है और कुछ आत्मोत्साह भी बढ़ जाता है।"[4]कहने का तात्पर्य यह कि समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा अपनी अज्ञानता एवं अनपढ़ता के कारण अपनी ही बनाई मनोवृति के कारण स्वयं भी उलझन में है ; दुखी है और दूसरों को भी दुखी करने का माध्यम बनता है। इसी अज्ञानतावश वह अपने मन में अपने धर्म के प्रति कट्टरता धारण कर लेता है जो भावी समाज के लिए सदैव ही सिरदर्द बनी रहती है। साथ ही समाज के विकास में रोड़ा बन कर खड़ी रहती है। "छोटा पाकिस्तान! शहर के लोग उस इलाके को इसी नाम से संबोधित करते थे। हिन्दू रिक्शेवाले रात के वक़्त उस तरफ जाने से डरते थे–कहीं काटकर लोग अपनी दुकानों में न टाँग लें! लगभग सौ क़दम आगे चलकर बाईं ओर मुड़ने पर हिन्दुओं का मुहल्ला था। उसके बाद फिर एक क़ब्रिस्तान–खून बड़ा–सा। जमील को वह जगह बहुत अच्छी लगती थी, इसलिए वहाँ वह धीरे–धीरे चला करता था– कब्रिस्तान की शान्ति का लुत्फ़ उठाते हुए। क़ब्रिस्तान के बाद फिर उसी तरह की दुकानें नज़र आती थी। मशीनों पर बड़ी–बड़ी कैंचियाँ रखे दर्जी, उस्तरे घुमाते हज्जाम, छतों से गोश्त के टुकड़े लटकाए क़साई–यह सब देखकर कोई भी डर सकता था। जमील भी डरा। अच्छा ही हुआ कि वह यासमीन के साथ रिक्शे पर बैठकर नहीं आया, वरना.....वरना क्या ये लोग उसे मार डालते? हिन्दू समझकर ?"[5]लेखक द्वारा रचित उपन्यास 'अपवित्र आख्यान' के इस प्रसंग से यह बात स्पष्ट होती है कि लोगों के मन में विद्यमान इस प्रकार की धार्मिक विकृति से समाज में रह रहे अन्य लोगों पर कितना बुरा असर पड़ता है। एक से दूसरे पर तथा दूसरे से तीसरे पर इसी प्रकार यह लड़ी अपनी बरकरारता रखती है और समाज में बहुत ही गलत संदेश जाता है।

धर्म के साथ–साथ ही यह मानसिक विकृति भाषा को भी अपनी चपेट में ले लेती है जो भविष्य में साम्प्रदायिकता के प्रचलन में अपनी विशेष भूमिका निभाती है। क्योंकि ऐसी विकृति वाले लोग धर्म से जुड़ी प्रत्येक वस्तु भाषा, किताब, रंग, स्थान, त्योहार इत्यादि सभी को अपने कार्य क्षेत्र का एक अहम हिस्सा मानता है और सभी पर अपना अधिकार जमाने को अमादा रहता है।"मंडप के बाजे बंद हो गए। सर्वत्र एक भयंकर चुप। ईश्वर ने सृष्टि का संचालन स्थगित कर दिया। आगे क्या हुआ, पंडित जी ने क्या–क्या कहा, वह किस तरह वहाँ से चलकर घर तक पहुँचा–जमील का कुछ भी याद नहीं। बस, इतना याद था कि वालिद साहब उसकी पीठ पर जूते बरसा रहे थे और चीख रहे थे : 'गया था काफ़िरों की किताब पढ़ने.....!'

जमील ने बहुत सोचा, बहुत सोचा, मगर उसकी समझ में यह नहीं आया कि वह संस्कृत क्यों न पढ़े ? वह रामचरितमानस को छू क्यों नही सकता ?"[6]

"यूँ कि हिन्दी पढ़े–लिखे मुसलमानों का होना अब बहुत ज़रूरी हो गया है इस मुल्क में। अब देखिए न, इसी अपने शहर में ले–दे कर मुसलमानों का एक तो स्कूल है–शम्शाद हायर सेकंडरी स्कूल–और उसमें भी हिन्दी के उस्ताद हैं कोई मिश्रा जी!"

"मगर दूसरे विद्यालयों में, जहाँ....."
"क्या कहा ? विधया.....लया....यानी स्कूल.....?"
"जी वहाँ उर्दू पढ़ाने वाले भी तो मुसलमान हैं.....!"

"मगर उर्दू कितने विधयालों में पढ़ाई जाती है, पता है आपको ? चन्द....."[7]कहने का भाव यह कि ऐसी सामाजिक मनोवृति से समाज का प्रत्येक कार्य क्षेत्र प्रभावित होता है।"विशिष्ट अर्थ में साम्प्रदायिकता अपने ही धार्मिक तथा जानीय समूह के प्रति निष्ठा की भावना है। साम्प्रदायिकता के कारण व्यक्ति अपने सम्प्रदाय या जातीय एवं धार्मिक समूह को अधिक महत्त्व देता है और अन्य समाजों के एवं राष्ट्रों के हितों की अवहेलना करता है।"[8]ऐसी सोच वाले व्यक्तियों के मन में अपने ही धर्म एवं जाति के प्रति एक विशेष अवधारणा मन में अपने पूरे वेग एवं जोश के साथ विद्यमान होती है। उनका इस बात पर पूर्णतः विश्वास होता है कि अपने धर्म एवं जाति के प्रति जो भी विचार उनके मनमें हैं केवल वही सत्य है बनिस्पत अन्य के। इस बात का दूसरा खतरनाक पहलू यह है कि वह इस बात पर भी अडिग रहता है कि दूसरे भी उसी की विचारधारा से सहमत हों यदि कोई अपनी असहमति जताता है तो लड़ाई दंगों के लिए अमादा हो जाते हैं। इसी प्रकार दूसरी जाति अथवा धर्म वाला भी यदि इसी प्रकार की अवधारणा अपने मन में लिए घूम रहा है तो इन दोनों गुटों को दुनिया की कोई भी ताकत आपस में मिला नहीं सकती।दोनों समाजिक समूह एक दूसरे पर बेबुनियाद इल्जाम लगाने में भी अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ते और ऐसे साम्प्रदायिक दंगों से एक नया ही पहलू निकलकर अपनी विशेष पहचान बनाता है जिसे आतंकवाद कहा जाता है। दोनों गुटों की आपसी लड़ाई में से कोई तीसरा ही अपना उल्लू सीधा कर लेता है। दोनों गुट अपनी–अपनी जगह सही सिद्ध होते रहते हैं और समाज का कोई साधारण जन व्यर्थ ही इसका खामियाजा भुगतता है। "तभी गोलियों की आवाजें सुनाई पड़ीं। लगा, दीवाली की रात है और मुहल्ले में पटाखे छूट रहे हैं। मगर यह दीवाली की रात नहीं थी। और वे आवाजें भी पटाखों की नहीं थीं।

फिर चारों तरफ़ भगदड़ मच गई।
हवा में सायरन की आवाज़ गूँज उठी।
गोलियों की तड़तड़ाहट बढ़ती चली गई।
फिर एक भीड़ शादीघर में घुस आई।
वे लोग बाराती नहीं थे।

"क्या हुआ?" एक प्रश्न उठा तो जवाब में सुनाई पड़ा–
"एनकाउंटर। इसी मुहल्ले में, बगल के घर में शायद एनकाउंटर हुआ है। कई दिनों से सुनने में आ रहा था कि वहाँ आतंकवादी छिपे हुए हैं।"
"आतंकवादी"
किसी के मुँह से यह एक शब्द निकला। बस और उसका मुँह खुला का खुला रह गया।
तभी कई पुलिसवाले शादीघर में घुस आए।
कुल्लू ने सोचा, खाँ साहब के मेहमान होंगे और वह आगे बढ़कर एक पुलिसवाले से हाथ मिलाने लगा।
आसमान में एक हवाई फायर हुआ।
अगले क्षण, कल्लू नाम का, शादी का जोकर ग़ायब था।"[9]तात्पर्य यह कि साम्प्रदायिकता से आतंकवाद का जन्म होता है और आतंकवाद का न तो कोई धर्म होता है और न ही कोई जात। उसका तो केवल एक ही लक्ष्य होता है केवल 'विनाश'।

संसार में अन्य धर्मों के अलावा केवल हिन्दू और मुसलमान ही ऐसे धर्म हुए हैं जिन्होंने पुरी दुनिया में अपनी धर्म की श्रेष्ठता का प्रदर्शन करने; उस पर अमल करने तथा अपनी जातिय श्रेणी की एकता एवं उसे ही सर्वस्व मानने एवं मनाने में नीचता एवं अत्याचार तक के स्तर का बहुत बार प्रत्यन किया है।"भारत में मुसलमानों का अत्याचार इतना भयानक रहा कि संसार के इतिहास में इसका जोड़ नहीं मिलता। इन अत्याचारों के कारण हिन्दुओं के हृदय में इस्लाम के प्रति जो घृणा उत्पन्न हुई, उसके निशान अभी तक बाकी हैं, उन्हें शिष्ट मुसलमान भी मन ही मन अनुभव करते हैं। यह बड़ी ही अर्थ पूर्ण बात है कि भारत के किसी भी मुसलमान विद्वान ने मुसलमानी अत्याचारों को उचित बताने अथवा भीषणता पर पर्दा डालने की कोशिश नहीं की। फिर भी यद्यपि हिन्दू और मुसलमान इस देश में एक साथ जीते चले आये हैं, लेकिन, उनके दिल साफ नहीं हुए।"[10]स्पष्ट रूप से निष्कर्ष निकलता है कि अज्ञानतावश एवं कट्टरतावश किये गये ऐसे सारे कार्य जो किसी निजी धर्म एवं जाति को मद्देनज़र रख कर किये गये हों, समाज के विनाश का कारण ही बनते हैं। इन सभी कार्यों में रूढ़ियुक्तियाँ अपनी विशेष भूमिका निभाती हैं। क्योंकि रूढ़ियुक्तियाँ समाजिक जीवन का एक ऐसा पहलू है जो मानसिक भय का फायदा उठाकर अपना अस्तित्व कायम रखती हैं। जिन लोगों के मन में प्रत्येक कार्य के पीछे दैविक प्रकोप अथवा बेकार की अपनाई हुई नैतिकता से संबंधित भय विद्यमान रहेगा, विभिन्न प्रकार की रूढ़ियुक्तियाँ समाजिक विकास की रूकावट में अपना हिस्सा डालती रहेंगी जो भविष्य में भावी पीढ़ियों के लिए मुसीबत का कारण ही बनेगी। साथ ही साथ उनकी मानसिक स्थिति को भी प्रभावित करेगी। पुराने लोग अपने बच्चों को अपने धर्म अथवा जाति के प्रति इस प्रकार की शिक्षा से ओतप्रोत करने में अपना परम धर्म समझते हैं कि यह हमारे खानदान की परम्परा है इसे ऐसे ही बनाए रखने में ही अपने बुर्जुगों का सम्मान है।

वैसे तो यह शाश्वत् नियम ही रहा है कि जैसे जैसे समाज में बदलाव आता रहता है। शिक्षा के लक्ष्य भी उसी के अनुसार बदलते रहते हैं। और जैसे–जैसे शिक्षा अपने लक्ष्य निर्धारित करती है। समाज भी उसी तरह ही अपनी राह बनाता है। किन्तु इसे विडम्बना ही कहेंगे कि जैसे जैसे व्यक्ति शिक्षा के माध्यम से आगे बढ़ता जा रहा है वह मात्र तकनीकि स्तर पर ही गिनने योग्य है जिसमें कदाचित् कहीं मानवीय कल्याण निहित है तो उससे कहीं ज़्यादा नुक्सान की प्रवृति है और इस संबंध में हम गिरती नैतिकता, खंडित होते सांस्कृतिक विचार, प्रत्येक क्षेत्र में कट्टरता, मानसिक भय, नफरत, लालच, अकेलापन, अहं, घमण्ड, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि इसी नुकसान की श्रेणी में ही रखने को अमादा होंगे। क्यों, क्योंकि यदि शिक्षा का कार्य मानव का आसमान की सैर कराना है तो धरती पर रहना सिखाना भी है। अब इसे शिक्षा की विडम्बना ही कहें कि शिक्षा मानवीय जीवन को आसमान की सैर तो करा रही है। किन्तु धरती पर रहना सिखाने में कामयाब नही हो पा रही है।

साम्प्रदायिकता के इस बीज नें समस्त संसार में मानवीय जीवन पर एक ऐसा ग्रहण लगा दिया है जिसे शिक्षा भी धोने में नकामयाब रही है। अध्ययन, चिंतन एवं मनन के पश्चात् यदि इसके दूसरे पहलू पर दृष्टिपात किया जाए तो कदाचित् यह कहना असंगत भी नहीं होगा कि भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में इसका दूसरा बहुत बड़ा पहलू राजनीति तो नहीं है जो कदाचित् शिक्षिक लोगों की भीड़ में अपने अनपढ़ एवं कट्टर प्रवृति वाले अपने तरीके से सम्मोहित किए हुए लोग शामिल कर पूरे समाज को केवल अपनी सत्ता प्राप्ति हेतु इस्तेमाल कर रहे हों? यदि इसका जवाब हाँ में है तो फिर इससे अधिक शर्म एवं लज्जा से भरपूर अन्य कोई दूसरी बात हो नही सकती कि अनपढ़ और लालची लोग शिक्षित लोगों को काबू में किए हुए हैं जिससे समाज में साम्प्रदायकिता रुकने का नाम ही नही ले रही है।

लेखक अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से समाज में फैल रही इस प्रकार की विकृति को बड़े ही स्टीक ढंग से प्रस्तुत किया है और सामाजिक व राजनैतिक पक्ष को यह आइना दिखाने की कोशिश की है कि आप लोगों की लालची प्रवृति ने समाज को कितना नीचे गिरा दिया है।

सारांशः

संसार ने भौतिक रूप से चाहे कितनी भी तरक्की कर ली हो किन्तु इस बात को नहीं भुलाया जा सकता कि इस तरक्की की आड़ में वह इत्ना संकुचित एवं पदार्थवादी हो चुका है कि उसकी सोच केवल अपनी तक ही सीमित हो चुकी है। वह अपनी जाति, धर्म, सम्प्रदाय इत्यादि के इर्द–गिर्द ही अपना सर्वस्व मानने लगा है। आपसी मिलवर्तन की भावना का उसके दिल में अंत हो चुका है। वह अपने प्रति हुई किसी भी प्रकार की बुराई को सुन ही सकता हालाँकि उसे पता है कि वही सच्चाई है। किन्तु फिर भी इस बात पर आकर वह आँखें

मूंद लेता है। उसकी यही प्रवृति अपनी जात, धर्म एवं सम्प्रदाय के प्रति भी कूट–कूट कर भरी हुई है। आज भी भारत के विभिन्न कोनों में ऐसी साम्प्रदायिक घटनाओं का चलन निर्विघ्न जारी है और स्थानक सरकारें अपने लालच हेतु मूक दर्शक बनी हुईं हैं।

पाद टिप्पणियाँ:

[1]दूबे श्यामाचरण, भारतीय समाज (वंदना मिश्र–अनुवादक), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ–01
[2]बिस्मिल्लाह अब्दुल, समर शेष है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ–66
[3]बिस्मिल्लाह अब्दुल, दंतकथा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ–81
[4]मिश्र माधवप्रसाद, सामाजिक कुरीतियाँ, सस्ता साहित्य मंडल, अजमेर, 1975, पृष्ठ–174
[5]बिस्मिल्लाह अब्दुल, अपवित्र आख्यान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ–14
[6]बिस्मिल्लाह अब्दुल, अपवित्र आख्यान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ–21
[7]बिस्मिल्लाह अब्दुल, अपवित्र आख्यान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ–17
[8]सिंह अरूण कुमार, समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मातीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ–197
[9]बिस्मिल्लाह अब्दुल, शादी का जोकर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ–70
[10]दिनकर रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, जनवाणी प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्राईवेट लि0, कलकत्ता, 1962, पृष्ठ–161

रवीन्द्र कुमार
अनुसन्धित्सु (हिन्दी विभाग),लवली प्रोफैशनल यूनीवर्सिटी, (फगवाड़ा पंजाब).

LBP PUBLICATION